# ऋषि दयानन्द के साहित्य में मानवतावादी स्वर

**अनिता कुमारी**
पी.एच.डी शोध–छात्रा
हिन्दी विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

**शोध संक्षेपः**

*ऋषि दयानन्द के विचारों, सिद्धांतों और उनके दर्शन को यद्यपि भारतीय परिप्रेक्ष्य में ही परिपक्वता तथा प्रासंगिकता मिली थी तथापि उनमें अखिल मानवता के लिए जो संदेश निहित था, उसे अभी तक सम्यक्तया नहीं पहचाना गया है। धर्म के जिन मूलभूत तत्वों का निरूपण एवं प्रतिपादन दयानन्द ने किया, वे निखिल मानव समाज को स्वीकार्य हो सकते हैं, इस कथन में विवाद की कोई बात नहीं हैं, क्योंकि जैसा कि हम देख चुके हैं दयानन्द ने अहिंसा, सत्य, परदुखकातरता, वि वमैत्री जैसे नैतिक मन्तव्यों को ही धर्म का मूल स्वीकार किया था।*

**शोधालेख के उद्देश्यः–**

1. मानवीय मूल्यों की अवधारणा को समझना।
2. भारतीय साहित्य में मानव के जीवन निर्माण के प्रति मौजूद मूल्यों को समझना।
3. ऋषि दयानन्द के मानवतावादी स्वर को वैश्विक परिप्रेक्ष्य में विवेचन करना।

**प्रस्तावनाः–**

प्रायः कहा जाता है कि ऋशि दयानन्द ने ''वेदों की ओर लौटों'' का नारा दिया। स्वामी जी के बारे में बहुत कुछ पढ़ने तथा समझने पर भी मैं यह नहीं जान सकी कि इस कथन का स्त्रोत क्या है? कब और किस संदर्भ में स्वामी जी ने वेदों की ओर लौटने की बात कही थी? तथापि यह सच है कि ऋशि दयानन्द ने वैदिक चर्चा का पुनरुद्धार किया था तथा वेदों को मानव जीवन के साथ जोड़ा। इसका एक कारण जो हमारी समझ में आता है वह यह है कि दयानन्द ने वेदों में मानववाद की उदात्त विचारधारा को देखा था। वेदों में जो कुछ कहा गया है, किसी वर्ग, नस्ल, देश–प्रदेश अथवा वि ि ाश्ट भाशा बोलने वालों को लक्ष्य में रख कर नहीं कहा गया है। वेदों के अनेक मंत्रों में मनुश्य मात्र के प्रति मैत्री की भावना के दर्शन होते हैं। यजुर्वेद में कहा गया है– हम प्राणी मात्र को मित्र की दृश्टि से देखें, समस्त प्राणी हमारे मित्र हैं और हम उन्हें इसी भाव से देखते हैं। यजुर्वेद में मानव की संस्कृति को समस्त विषयों में व्यापक 'विश्ववारा, संस्कृति' कहा गया है।

यदि संसार के समस्त मानव ही नहीं सारे प्राणी हमारे वि वनीय मित्र हैं तो हमारा किसी से भयभीत होने का प्रश्न ही नहीं उत्पन्न होता। यजुर्वेद की प्रार्थना है कि संसार में हम जहाँ कहीं, जो चेष्टा करते हैं, ईश्वर हमें वहाँ निर्भीक बनाये। हम मानवी प्रजा तथा पशु–जगत् से निर्भीक रहें। वेदों में समस्त जगत् को एक ऐसा नीड़ कहा है जिसमें सम्पूर्ण प्राणि–जगत् सुख पूर्वक निवास करता है। यह वि व नीड़ स्वयं सच्चिदानन्द परमात्मा है जिसकी गोद में सम्पूर्ण प्राणि–जगत् विश्राम पाता है।

दयानन्द ने वेदों में प्रदर्शित इस मानववाद को परखा था, समझा था तथा वे इसके प्रचार–प्रसार के इच्छुक थे। जब उन्होंने आर्य समाज की स्थापना की तो इसका मुख्य उद्देश्य संसार का उपकार करना ठहराया। यदि उनकी दृष्टि संकीर्ण होती या वे किसी विशिश्ट जाति, वर्ग, देश, प्रदेश का हित चिन्तन करते तो संसार का व्यापक हित उनकी कार्य योजना का अंग नहीं बनता। व्यक्ति और समाज के हितों का सापेक्षित महत्व बताने वाला तथा व्यष्टि और समष्टि हितों की अन्योन्य निर्भरता बताने वाला आर्य समाज

का नवां तथा दसवां नियम भी दयानन्द के व्यापक मानवीय दृष्टिकोण का परिचायक है।

ऋशि दयानन्द की दृश्टि में मनुष्य सर्वोपरि है। 'न ही मानुशात् श्रेष्टतरं हि किंचित' की आर्श वाणी को उन्होंने माना तथा अपने अन्तस्तल से उसको स्वीकारा। उनकी दृश्टि में श्रेश्ठ मनुष्य कौन है? स्वमन्तवयामन्तव्य प्रकाश के प्रकरण में वे लिखते हैं – ''मनुष्य उसी को कहना कि मनन–शील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख–दुख और लाभ–हानि को समझे। अन्यायकारी बलवान् से भी ना डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे। इतना ही नहीं, किन्तु अपने सर्वसामर्थ्य से धर्मात्माओं की, चाहे वे महा अनाथ, निर्बल और गुण रहित क्यों न हों, उनकी रक्षा, उन्नति, प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती, सनाथ, महाबलवान् और गुणवान् भी हो, तथापि उसका नाश, अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करे, अर्थात जहाँ तक हो सके, वहाँ तक अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करे। इस काम में चाहे उसको कितना ही दारुण दुःख प्राप्त हो, चाहे प्राण भी भले ही जावें, परन्तु इस मनुश्य रूप धर्म से पृथक कभी ना होवे। दयानन्द की दृश्टि में यही मनुश्य रूप धर्म है। अनाथ और निर्बल की सहायता करने के लिए तो अनेक लोग आगे आ सकते हैं, किन्तु सबल अधर्मात्मा का अप्रियाचरण करने का साहस बहुत कम लोग बटोर पायेंगे। धर्मात्मा और अधर्मात्मा के प्रति इस प्रकार का संतुलित आचरण निर्दिष्ट करना दयानन्द के चिंतन की विशेशता है।

दयानन्द को भतृहरि का एक नीति श्लोक अत्यंत प्रिय था जिसमें कहा गया है कि सच्चा धैर्यवान् मनुश्य वह है जो सत्य, न्याय और धर्म के पथ से कभी विचलित नहीं होता। न्यायनिष्ठ व्यक्ति को ही धीर पुरूष कहना चाहिए। उसकी विशेशता यह है कि वह निन्दा स्तुति, सम्पन्नता–दरिद्रता तथा जीवन–मृत्यु की स्थिति में अपना धैर्य नहीं खोता और न्याय के पथ से कभी नहीं हटता। दयानन्द को महामति विधुर का वह वाक्य भी प्रिय था जिसमें कहा गया है कि संसार में मधुरभाषी लोग तो बहुसंख्यक हैं, किन्तु ऐसे लोग नितांत अल्प हैं जो अप्रिय, किन्तु पथ्य कारक बात कहते हैं, ऐसी बात को सुनने वाले तो और भी कम हैं।

मानवमात्र के लिए मानने योग्य, हितपूर्ण बातों को दयानन्द 'सर्वतन्त्र सिद्धान्त' कहते हैं जिसमें पक्षपात का लेषमात्र भी नहीं रहता। उनका कहना है कि सारे विद्वान एकमत हो जाये तो वे संसार का हित करने में सक्षम होंगे। दयानन्द के द्वारा की गई मतमतान्तरों की समीक्षा और आलोचना सर्वथा पक्षपात भून्य है। सत्यार्थप्रकाश की भूमिका में वे लिखते हैं कि ''यदि मैं भी कभी किसी एक मत का पक्षपाती होता जैसें कि आजकल के लोग स्वमत की स्तुति, मंडन और प्रचार करते हैं और दूसरे मत की निन्दा, हानि और उसे बन्द कराने में तत्पर रहते हैं, वैसे मैं भी होता, परन्तु ऐसी बातें मनुष्यपन से बाहर हैं।'' इस उद्धरण में दयानन्द मत–मतान्तरों के बारे में विचार करते समय पक्षपात तथा एकांगीपन को मानवता विरोधी मानते हैं। दयानन्द की दृष्टि में ''जो बलवान् होकर निर्बलों की रक्षा करता है वही मनुष्य कहाता है और जो स्वार्थवष होकर पर – हानि मात्र करता रहता है वह जानो पशुओं का भी बड़ा भाई है।''

ग्यारहवें समुल्लास की अनुभूमिका में दयानन्द का मानवतावादी स्वर पुनः मुखर हुआ जहाँ उन्होंने लिखा– ''मनुष्य जन्म का होना सत्यासत्य के निर्णय करने कराने के लिए है न कि वादविवाद, विरोध करने–कराने के लिए,'' दयानन्द का विश्वास था कि ''जब तक इस मनुष्य जाति से परस्पर मिथ्या मत–मतान्तर का विरूद्धवाद न छूटेगा, तब तक अन्योनय को आन्नद न होगा। यदि हम सब मनुष्य और विशेष विद्वज्जन ईर्ष्या–द्वेष छोड़ सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण करके और असत्य का त्याग करना कराना चाहे तो हमारे लिए यह असाध्य नहीं है।''

इस कथन को यदि व्याख्यात किया जाये और निहित भाव का विस्तार किया जाये तो हम इस निश्कर्श पर पहुँचते हैं कि यद्यपि विचारशील मनुष्यों में मत–सम्प्रदाय, राजनीति तथा आर्थिक प्रश्नों आदि को लेकर मत भिन्नता स्वाभाविक बात है, किन्तु यदि इन्सान ठान ले तो एक मेज के इर्द–गिर्द बैठकर वह अपने पारस्परिक मतभेदों को दूर कर सकता है। उस स्थिति में हिन्दू–मुसलमान, मुसलमान–यहूदी,

पूंजीपति–मजूदर, काले–गोरे के पारस्परिक द्वन्द्वों के समाप्त होने में देर नहीं लगेगी। अन्ततः दयानन्द प्रार्थना करते हैं–''सर्वशक्तिमान् परमात्मा एकमत में प्रवत्त होने का उत्साह सब मनुष्यों की आत्माओं में प्रकाशित करें।'' हम पंचायतों से लेकर संयुक्त–राष्ट्रसंघ तक एकमत पर पहुँचने के लिए सचेष्ट नहीं रहते? दयानन्द के कथन का भी यही अभिप्राय है।

ऋशि दयानन्द की दृश्टि में मनुष्यों को सदा सत्य का पक्ष लेना चाहिए। बारहवें समुल्लास की अनुभुमिका में स्वामी जी अपना मन्तव्य प्रकट करते हैं कि सत्य की जय और असत्य के क्षय के अर्थ मित्रता से वाद या लेख करना हमारी मनुष्य जाति का मुख्य काम है। यदि ऐसा न हो तो मनुष्य की उन्नति कभी न हो। 'वादे–वादे जायते तत्वबोधः' के नीति–वाक्य की अनुगूंज दयानन्द के उक्त वाक्य में स्पष्ट सुनाई देती है। वह मनुष्य ही है जो परस्पर प्रेमयुक्त वाद या लेख के द्वारा अपना वैर विरोध दूर करता है, यदि उसमें मात्र पशुता होती तो एक हड्डी के लिए लहूलुहान कर देने तथा हो जाने वाले दो कुत्तों की भाँति वह स्वयं को नश्ट कर देता। तथापि मनुष्य सर्वगुण सम्पन्न भी नहीं है। स्वामी जी की सम्मति में बहुत मनुष्य ऐसे हैं जिनको अपने दोष तो नहीं दिखते, किन्तु दूसरों के दोश देखने में वे अति तत्पर रहते हैं। यह न्याय की बात नहीं है। क्योंकि प्रथम अपने दोश निकाले पश्चात् दूसरों के दोषों की दृष्टिपात करे। हमारे विचार से मनुष्यता की इससे अधिक उपयुक्त परिभाशा और क्या हो सकती है?

ऋशि दयानन्द को मनुष्य की क्षमता में विश्वास था। वे मनुष्यों की सत्यासत्य का विवके करने में सक्षम बुद्धि, न्याय और अन्याय के पार्थक्य को समझने की शक्ति तथा धर्माधर्म एवं कर्तव्याकर्तव्य का निर्णय करने की योग्यता के कायल थे। तेरहवें समुल्लास की अनुभूमिका में वे लिखते हैं– ''मनुष्य का आत्मा यथायोग्य सत्यासत्य के निर्णय करने का सामर्थ्य रखता है। जितना अपना पठित वा श्रुत है उतना निश्चय कर सकता है।'' इस तथ्य के आधार पर वे मानते हैं विभिन्न मत– सम्प्रदायों के अनुयायियों को एक दूसरे के विचारों और मान्यताओं से परिचित होना चाहिए। परस्पर सन्वाद या विचार विमर्श तथी सम्भव है जब हम एक दूसरे के विचारों का पहले से ज्ञान रखें। उनकी मान्यता थी कि सत्य को लेकर मानव समाज का एकमत होना असम्भव नहीं है। ''जो–जो सर्वमान्य सत्य विषय हैं, वे तो सब में एक से हैं। झगड़ा झूठे विशयों में होता है। अथवा एक सच्चा और दूसरा झूठा तो भी कुछ थोड़ा सा विवाद चलता है। यदि वादी प्रतिवादी सत्यासत्य निश्चय के लिए वाद–प्रतिवाद करें तो अवश्य सत्य का निश्चय हो जाये।'' दयानन्द की दृष्टि में मानव की यह मूलभुत एकता ही सर्वतन्त्र सिद्धांत है जिसे वे 'सामान्य सार्वजनिक धर्म' कहते हैं।

**निष्कर्षः–**

1. ऋषि दयानन्द का साहित्य समाज के बदलते परिप्रेक्षय में उचित योगदान रखता है।
2. ऋषि दयानन्द के विचार विश्व को श्रेष्ठ बनाने के है।
3. विश्व में फैली अशांति का कारण भिन्न–भिन्न मत, पंथ और विचारों का होना है।
4. विश्व में मानव को सार्वभौमिक, सार्वकालिक विचारों को अपनाना ही होगा।

**संदर्भः–**

1. मुखोपध्याय देवेन्द्रनाथ, 'आदर्श सुधारक स्वामी दयानन्द,' ज्ञनज्ञान प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. भारतीय डॉ भवानीलाल, 'नवजागरण के पुरोधा,' वैदिक पुस्तकालय, अजमेर।
3. वेदश्रमी वीरसेन, 'वैदिक सम्पदा,' गोविन्दराय हासानन्द, नई सड़क दिल्ली।
4. मीमांसक युधिश्ठिर, 'ऋषि दयानन्द सरस्वती के ग्रन्थों का इतिहास,' रामलाल कपूर ट्रस्ट बहालगढ़, सोनीपत (हरियाणा)।
5. भारतीय डॉ. भवानी लाल, 'ऋषि दयानन्द सिद्धांत और जीवन दर्शन,' श्री घूड़मल प्रकाशन, हिंडौन सिटी।